भागचन्द पद संग्रह।

(१)

उग्रसेन गृह ब्याहन आये, समद विजयके लाल आये ॥ उग्रसेन०॥टेक॥ अशरन पशु आक्रन्दन लखिके, करुना भाव उपाये। जगत विभूति भूति सम तजिके, अधिक विराग बढ़ाये ॥ उग्रसेन० ॥१॥ मुद्रा नगन धरी नन्दा विन, आतम ब्रह्मरुचि लाये। उर्जयन्तिगिरि शिखरापरि शुचि थानकमें थाये ॥ उग्रसेन ॥२॥ पंचमुष्टि चाढ़, कच लुंच मुंच रज, सिद्धनको सिर नाये। धवल ध्यान पावद पावक ज्वालातें, करम कलंक जलाये ॥ उग्रसेन०॥३॥ वस्तु समस्त हस्तरेखावत जुगपत ही दरसाये। निरवशेष विध्वस्त कर्मकर, शिवपुर काज सिधाये ॥ उग्रसेन० ॥ ४ ॥ अव्याबाध अगाध बोधमयनत्रानन्द सुहाये। जगभूषन दूषनविन स्वामी, भागचन्द गुन गाये ॥ उग्रसेन० ॥५॥

(२)

सांची तो गंगा यह वीतरागवानी, अविच्छिन्न धारा निज धर्मकी कहानी ॥ सांची० ॥टेक॥ जामें अति ही विमल अगाध ज्ञान पानी, जहां नहीं संभयादि पंककी निशानी ॥ सांची ॥ १ ॥ सप्तभंग जहं तरंग उछलत सुखदानी, संतचित्त मरालवृन्द रमैं नित्य ज्ञानी ॥ सांची ॥२॥ जाके अवगाहनतैं शुद्ध होय प्रानी, भागचन्द्र निहचै घटमाहिं या प्रमानी । सांची० ॥३॥

(३) राग प्रभाती ।

प्रभु तुम मूरत दृगसों निरखै हरखै मोरो जीयरा ॥ प्रभु तुम० ॥ टेक ॥ भुजत कषायानल पुनि उपजै, ज्ञानसुधारस सीयरा ॥ प्रभु तुम०॥१॥ वीतरागता प्रगट होत है, शिवथल दीसै नीयरा ॥ प्रभु तुम० ॥२॥ भागचन्द तुम चरन कमलमें, वसत सन्त जब हीयरा ॥ प्रभु तुम० ॥३॥

(४) राग प्रभाती ।

अरे हो जियरा धर्ममें चित्त लगाय रे ॥ अरे

हो० ॥ टेक ॥ विषय विषसम जान भौंदू वृथा क्यों तू लुभाय रे । अरे हो ॥१॥ संग भार विषाद तोकों, करत क्या नहिं भाय रे । रोग-उरग-निवास वामी कहा नहिं यह काय रे ॥ अरे हो० ॥२॥ काल हरिकी गर्जना क्या, तोहि सुनि न पराय रे, आपदा भर नित्य तोकों, कहा नहीं दुःख दायरे ॥ अरे हो० ॥३॥ यदि तोहि कहा नहीं दुख, नरकके असहाय रे । नदी वैतरनी जहां जिय परे अति बिललाय रे ॥ अरे हो० ॥४॥ धनादिक घनपटल सम, छिनकमांहि बिलाय रे । भागचन्द सुजान इमि जदु कुल-तिलक गुन गाय रे अरे हो ॥५॥

(५) राग बिलावल ।

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ॥ टेक ॥ स्वजन कुटुम्बी जन तू पोखे, तिनको होय सदैव गुलाम । सो तो हैं स्वारथके साथी, अन्तकाल नहिं आवत काम ॥ सुमर सदा० ॥१॥ जिमि मरीचिकामें मृग भटके, परत सो जब ग्रीषम अति घाम । तैसे तू भवमाहीं भटके धरत

न इक छिनहू विसराम ॥ सुमर० ॥ २ ॥ करत न ग्लानी अब भोगनमें. धरत न वीतराग परिनाम। फिर किमि नरकमाहिं दुख सहसी. जहां सुख लेशमें आठों जाम सुमर ॥ ३ ॥ ताते आकुलता अब तजिके. थिर ह्वै बैठो अपने धाम। भागचन्द वसि ज्ञान नगरमें. तजि रागादिक ठग सब ग्राम ॥ सुमर० ॥ ४ ॥

[६] राग मारू

श्रीमुनि राजत समता संग। कायोत्सर्ग समायत अंग ॥ टेक ॥ करते नहि कछु कारज ताते आलम्बित भुज कीन अभंग। गमन काज कछु हू नहि ताते. गति तजि छाके निज रसरंग ॥ श्रीमुनि० ॥ १ ॥ लोचनतें लखिवो कछु नाहीं. ताते नासा दृग अचलंग। सुनिवे जोग रह्यो कछु नाहीं. ताते प्राप्त इकंत सुचंग ॥ श्रीमुनि० ॥ २ ॥ तहं मध्यान्हमाहि निज ऊपर. आयो उग्र प्रताप पतंग। कैधों ज्ञान पवनबल प्रज्वलित. ध्यानानलसों उछलि फुलिंग ॥ श्रीमुनि० ॥ ३ ॥ चित्त निराकुल अतुल

उठत जहं परमानन्द पियूषतरंग। भागचन्द ऐसे श्रीगुरुपद, वंदत मिलत स्वपद उत्तंग॥ श्रीमुनि०॥४॥

(७) राग गौरी।

आतम अनुभव आवै जब निज, आतम अनुभव आवै। और कछु ना सुहावै, जब निज०॥टेक॥ रस नीरस हो जात ततच्छिन, अच्छ विषय नहीं भावै॥ आतम०॥१॥ गोष्ठी कथा कुतूहल विघटै, पुद्गलप्रीति नसावै॥ आतम०॥२॥ राग दोष जुग चपल पक्ष जुत मन पक्षी मर जावै॥ आतम०॥३॥ ज्ञानानन्द सुधारस उमगै, घट अन्तर न समावै॥ आतम०॥४॥ भागचन्द ऐसे अनुभवके हाथ जोरि सिर नावै॥ आतम०॥५॥

(८) राग-ईमन

महिमा है अगम जिनागमकी॥ टेक॥ जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूरति आतमकी॥ महिमा०॥१॥ रागादिक दुखकारन जानैं, त्याग बुद्धि दीनी भ्रमकी। ज्ञान ज्योति जागी घट अन्तर, रुचि वाढ़ी पुनि शमदमकी॥ महिमा०॥२॥

कर्म बन्धकी भई निरजरा. कारण परंपराक्रमकी।
भागचन्द शिवलालच लागो. पहुंच नहीं है जहां
जमकी ॥ महिमा० ॥३॥

[७]

ऐसे जैनी मुनि महाराज. सदा उर मो बसौ
॥ टेक ॥ निज समस्त परद्रव्यनि माहीं. अहंबुद्धि
तजि दीनी। गुन अनन्त ज्ञानादिक मम पुनि.
स्वानुभूति लखि लीनी ॥ ऐसे० ॥१॥ जे निजबुद्धि
पूर्व रागादिक. सकल. विभाव निवारें। पुनि अबुद्धि
पूर्वक नाशनको. अपने शक्ति सम्हारें ॥ ऐसे० ॥२॥
कर्म शुभाशुभ बन्ध उदयमें हर्ष विषाद न राखें।
सम्यगदर्शनज्ञान चरनतप. भाव सुधारस चाखें ॥
ऐसे० ॥३। परकी इच्छा तजि निजबल सजि. पूरव
कर्म खिरावें। सकल कर्मतें भिन्न अवस्था सुखमय
लखि चित चावें ॥ ऐसे० ॥४॥ उदासीन शुद्धोप-
योगरत सबके दृष्टा ज्ञाता। बाहिजरूप नगन
समताकर. भागचन्द सुखदाता ॥ ऐसे० ॥५॥

[१०] राग—जंगला

तुम गुणमनिनिधि हो अरहंत ॥टेक॥ पार न पावत तुमरो गनपति, चार ज्ञान धरि संत ॥ तुम गुन० ॥१॥ ज्ञानकोष सब दोष रहित तुम अलख अमूर्ति अचिंत ॥ तुम गुन० ॥२॥ हरिगन अरचत तुम पदवारिज, परमेष्ठी भगवंत ॥ तुम गुन० ॥३॥ भागचन्दके घटमन्दिरमें बसहु सदा जयवंत ॥ तुम गुन ॥४॥

[११] राग जंगला

शान्ति बरन मुनिराई वर लखि । उत्तर गुनगन सहित (मूल गुन सुभग) बरात सुहाई ॥टेक॥ तप रथपै आरूढ़ अनूपम, धरम सुमंगलदाई ॥ शांति बरन ॥१॥ शिवरमनीको पानि ग्रहण करि, ज्ञानानंद उपाई ॥ शान्ति बरन ॥२॥ भागचन्द ऐसे बनराको, हाथ जोर सिरनाई ॥३॥

[१२] राग—जंगला

म्हांके जिनमूरति हृदय बसो बसी ॥ टेक ॥ यद्यपि करुना रसमय तद्यपि, मोह शत्रु हनि असी

अमी ॥ म्हाके० ॥१॥ भामण्डल नाको अति निर्मल, निःकलंक जिमि ससी ससी ॥ म्हाके० ॥२॥ लखत होत अति शीतल मति जिमि. सुधा जलधिमें, धसी धसी ॥ म्हाके० ॥३॥ भागचन्द जिस ध्यान मंत्रसों ममता नागिन नसी नसी ॥ म्हाके० ॥४॥

[१३] राग—खमाच

ज्ञानी मुनि छ ऐसे स्वामी गुनरास ॥ टेक ॥ जिनके शैलनगर मन्दिर पुनि. गिरिकन्दर सुखवास ॥ ज्ञानी० ॥१॥ निःकलंक परजंक शिला पुनि, दीप मृगांक उजास ॥ ज्ञान० ॥२॥ मृग किंकर करुना वनिता पुनि. शील सलिल तप ग्रास ॥ ज्ञानी०॥३॥ भागचन्द ते हैं गुरु हमरे तिनहीके हम दास। ज्ञान०

[१४] राग—खमाच

श्रीगुरु हैं उपगारी ऐसे वीतराग गुनधारी वे ॥टेक॥ स्वानुभूति रमनी संग क्रीड़ें, ज्ञानसंपदा भारी वे ॥ श्रीगुरु० ॥१॥ ध्यान पिंजरामें जिन रोको चित खग चंचलचारी वे ॥ श्रीगुरु० ॥२॥ तिनके चरन सरोरुह ध्यावें. भागचन्द अघटारी वे ॥३॥

[१५] राग—खमाच

सारौ दिन निरफल खोयवौ करै छै। नर भव लहिकर प्रानी विनज्ञान. सारौ दिन नि० ॥टेक॥ परसंपति लखि निज चितमाहीं. विरथा मूरख रोयवौ करै छै॥ सारो।१॥ कामानलतैं जरत सदा ही. सुन्दर कोयबौं करै छै॥ सारो ॥२॥ जिनमत तीर्थस्नान न ठानै. जलमौं पुद्गल धोयवा करै छै॥ सारौ ॥३॥ भागचन्द इमि धर्म विना शठ मोह नींदमें सोयबो करै छै॥ सारो ॥४॥

[१६] राग सोरठ।

स्वामी मोहि आपनो जानि तारौ. या विनती अब चित धारो ॥टेक॥ जगत उजागर करुणा सागर, नागर नाम निहारो॥ स्वामी मोहि० ।१॥ भव अटवीमें भटकत भटकत. अब मैं अति ही हारौ॥ स्वामी मोहि ॥२॥ भागचन्द स्वच्छन्द ज्ञानमय सुख अनंत विस्तारो॥ स्वामी मोहि० ॥३॥

[१७] राग सोरठ।

आवे न भोगनमें तोहि गिलान ॥टेक॥ तीरथ

नाथ भोग तजि दीने. तिनतें मन भय आन । तू तिनतें कहुं डरपत नाहीं. दीसत अति बलवान ॥ आवै न० ॥१॥ इन्द्रिय तृप्ति काज तू भोगै. विषय महा अघखान । सो जैसे घृतधारा डारै पावकज्वाल बुझान ॥ आवै न० ॥२॥ जे सुख तो तीछन दुख-दाई. ज्यों मधुलिप्त कृपान । तातें भागचंद इनको तजि. आतमस्वरूप पिछान ॥ आवै न० ॥३॥

[१८] राग मलार ।

मान न कीजिये हो परवीन ॥ टेक ॥ जाय पलाय चंचला कमला. तिष्टै दो दिन तीन । धन जोवन छनभंगुर सब ही. होत सुछिन छिन छीन ॥ मान न० ॥१॥ भरत नरेन्द्र खण्ड-षट नायक. तेहु भये मद हीन । तेरी बात कहा है भाई. तू तो सहज ही दीन ॥ मान न० ॥२॥ भागचन्द मार्दव रससागर. माहिं होहु लवलीन । तातें जगत जाल में फिर कहुं. जनम न होय नवीन ॥ मान न०॥३॥

[१८] राग मलार

अरे हो अज्ञानी तूने कठिन मनुषभव पायो

॥ टेक ॥ लोचन रहित मनुषके करमें. ज्यों बटेर खग खग आयो ॥ अरे हो० ॥१॥ सो तू खोवत विषयन माहीं. धरम नहीं चित लायो ॥ अरे हो० ॥२॥ भागचन्द उपदेश मान अब. जो श्रीगुरु फरमायो ॥ अरे हो० ॥३॥

[१६] राग मल्हार

वरसत ज्ञान सुनीर हो. श्रीजिनमुखघनसों ॥ टेक ॥ शीतल होत सुबुद्धि मेदिनी मिटत भवातपपीर । वरसत० ॥१॥ स्यादवाद नय दामिनि दमकै. होत निनाद गंभीर. ॥ वरसत ।२॥ करुना नदी बहै चहुंदिशितें. भरी सो दोई तीर ॥ वरसत० ॥३॥ भागचन्द अनुभव मन्दिरको तजत न संत सुधीर ॥ वरसत ॥४॥

[२०] राग मल्हार

मेघघटासम श्रीजिनवानी ॥ टेक ॥ स्यात्पद चपला चमकत जामें. वरसत ज्ञान सुपानी ॥ मेघ०।१। धरमसस्य जातें बहु बाढ़ै. शिव आनन्द फलदानी ॥ मेघघटा ॥२॥ मोहन धूल दबी सब यातें. क्रोधानल

सुबुझानी ॥ मेघघटा ॥२॥ भागचन्द बुधजन केकी-कुल, लखि हरखे चितज्ञानी ॥ मेघ० ॥३॥

[२०] राग धनश्री ।

प्रभू थांको लखि मम चित हरषायो ॥ टेक ॥ सुन्दर चिंतारतन अमोलक, रंकपुरुष जिमि पायो । प्रभू० ॥१॥ निर्मल रूप भयो अब मेरो, भक्तिनदी जल न्हायो । प्रभू० ॥२॥ भागचन्द अब मम कर-तलमें अविचल शिवथल आयो ॥ प्रभू० ॥३॥

[२१] राग मल्हार ।

प्रभू म्हांकी सुधि, करुना करि लीजे ॥ टेक ॥ मेरे इक अवलम्बन तुम ही, अब न विलम्ब करीजे प्रभू० ॥१॥ अन्य कुदेव तजे सब मैंने तिनतैं निज गुन छीजे ॥ प्रभू० ॥२॥ भागचन्द तुम शरन लियो है, अब निश्चलपद दीजे ॥ प्रभू० ॥३॥

[२२] राग कलिंगड़ा ।

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलिहैं ॥टेक॥ आप तरैं अरु परको तारैं, निष्प्रेही निर्मल हैं ॥ ऐसे० ॥१॥ तिलतुष मात्र संग नहिं जाकें, ज्ञान-ध्यान-गुण-बल

हैं ॥ ऐसे साधु० ॥२॥ शान्त दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मंन्दिरतुल्य अचल है ॥ ऐसे० ॥३॥ भागचन्द तिनको नित चाहै, ज्यों कमलनिको अल हैं। ऐसे०

[२३] राग कहरवा कलिंगड़ा

केवल जोति सुजागी जी, जब श्रीजिनवरके ॥टेक॥ लोकालोक विलोकत जैसे, हस्तामल बड़भागीजी ॥ केवल० ॥१॥ हार चड़ामनि शिखा सहज ही, नग्न भूमिमें लागीजी ॥ केवल० ॥२॥ समवसरन रचना सुर कीन्हीं, देखत भ्रम जन त्यागीजी ॥ केवल० ३। भक्ति सहित अरचा तब कीन्हीं परम धरम अनुरागीजी केवल० ॥४॥ दिव्य ध्वनि सुनि सभा दुवादश, आनंदरसमें पागीजी ॥ केवल ॥५॥ भागचन्द प्रभु भक्ति चहत है और कछु नहि मांगीजी ६॥

[२४] राग दमरी

जीवनिके परिनामनिकी यह, अति विचित्रता देखहु ज्ञानी ॥टेक॥ नित्य निगोदमाहिंतें कढिकर, नर परजाय पाय सुखदानी। समकित लहि अन्त-

मुहूर्तमें. केवल पाय वरें शिवरानी ॥१॥ मुनि एकादश गुणथानक चढ़ि, गिरत तहांतें चित भ्रम ठानी। भ्रमत अर्धपुद्गल प्रावर्तन. किंचित् ऊन काल परमानी ॥२॥ निज परिनामनिकी संभालमें, तातें गाफिल मत ह्वै प्रानी। बंध मोक्ष परिनामनि हीसों. कहत सदा श्रीजिनवर वानी ॥३॥ सकल उपाधि निमित भावनिसों. भिन्न सुनिज परनतिको छानी। ताहि जानि रुचि ठानि होहु थिर. भागचन्द यह सीख सयानी ॥४॥

[२६]

जीव ! तू भ्रमत सदीव अकेला। संग साथी कोई नहि तेरा ॥टेक॥ अपना सुख दुख आपहि भुगतै. होत कुटुम्ब न भेला। स्वार्थ भयें सब बिछरि जात हैं. विघट जात ज्यों मेला ॥१॥ रक्षक कोइ न पूरन ह्वै जब. आयु अन्तकी वेला। फूटत पारि बंधत नहीं जैसें. दुद्धर-जलको ठेला ॥२॥ तन धन जीवन विनशि जात ज्यों. इन्द्रजालका खेला। भागचन्द इमि लख करि भाई हो सतगुरुका चेला।

[२७] ख्याल

विन काम ध्यान मुद्राभिराम. तुम हो जगनायकजी ॥टक॥ यद्यपि. वीतराग मय तद्यपि. हो शिवदायकजी ॥ विन काम० ॥१॥ रागी देव आप हो दुखिया. सो क्या लायकजी ॥ विन काम ॥२॥ दुर्जय मोह शत्रु हनवेको. तुम वच शायकजी ॥ विन काम० ॥३॥ तुम भवमोचन ज्ञान सुलोचन, केवल क्षायकजी ॥ विन काम० ॥४॥ भागचन्द भागनतें प्रापति. तुम सव ज्ञायकजी ॥ विन० ॥५॥

[२८]

परनति सव जीवनकी, तीन भांति वरनी एक पुण्य एक पाप. एक रागहरनी ॥टक॥ तामें शुभ अशुभ वन्ध, दोय करें कर्मवन्ध, वीतराग परनति हो. भव समुद्र तरनी ॥१॥ जावत शुद्धोपयोग. पावत नाहीं मनोग. तावत ही मग्न जोग. कही पुण्य करनी ॥२॥ त्याग शुभ क्रिया कलाप. करो मत कदाच पाप. शुभमें न मगन होय. शुद्धता विसरनी ॥३॥ ऊंच ऊंच दशा धारि. चित प्रमादको विडारि,

ऊंचली दशानैं मति. गिरे अधो अधो धरनी ॥८॥ भागचन्द या प्रकार. जीव लहै सुख अपार. याके निरधारि स्याद्वादकी उचरनी ॥

[२६]

आकुल रहित होय इमि निशिदिन. कीजे तत्त्व विचारा हो। को मैं कहा रूप है मेरा. पर है कौन प्रकारा हो ॥टेक ॥१। को भव कारण बन्ध कहा को. आस्रव रोकनहारा हो। खिपत कर्म बन्धन काहेसों थानक कौन हमारा हो ॥२॥ इमि अभ्यास किये पावन है. परमानन्द अपारा हो। भागचन्द यह सार जान करि. कीजे बारंबारा हो॥ आकुल रहित होय०।३॥

॥ समाप्त ॥

(३०) राग ठुमरी ।

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसें, आतमरूप अबाधित ज्ञानी ॥ टेक ॥ रागादिक तो देहाश्रित हैं, इनतें होत न मेरी हानी । दहन दहत ज्यों दहन न तद्गत, गगन दहन ताकी विधि ठानी ॥ १ ॥ वरणादिक विकार पुद्गलके, इनमें नहिं चैतन्य निशानी । यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही, तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥ २ ॥ मैं सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञायक रस, लवण खिल्लवत लीला ठानी । मिलौ निराकुल स्वाद न यावत, तावत परपरनति हित मानी ॥ ३ ॥ भागचन्द्र निरद्वन्द निरामय, मूरति निश्चय सिद्धसमानी । नित अकलंक अवंक शंक बिन, निर्म्मल पंक बिना जिमि पानी ॥ सन्त निरन्तर चि० ॥४॥

(३१)

धन धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञानविलासी हो ॥ टेक ॥ दर्शन-बोधमई निजमूरति, जिनकों अपनी भासी हो । त्यागी अन्य समस्त वस्तुमें, अहंबुद्धि दुखदासी हो ॥ १ ॥ जिन अशुभोपयोगकी

परनति. सत्तासहित विनाशी हो। होय कदाच शुभोपयोग तो. तहं भी रहत उदासी हो॥ २॥ छेदत जे अनादि दुखदायक. दुविधि बंधकी फांसी हो। मोह-क्षोभ-रहित जिन परनति. विमल मयंक-कला-सी हो॥ ३॥ विषय-चाह-दव दाह खुजावन, साम्य सुधारस-रासी हो। भागचन्द ज्ञानानंदी पद, साधत सदा हुलासी हो॥ धन०॥ ४॥

(३०)

यही इक धर्ममूल है मीता! निज समकितसार-सहीता। यही०॥ टेक॥ समकित सहित नरकपद-वासा. खासा बुधजन गीता। तहंतें निकसि होय तीर्थंकर. सुरगन जजत सप्रीता॥ १॥ स्वर्गवास हू नीको नाहीं. विन समकित अविनीता। तहंतें च्यय एकेंद्री उपजत. भ्रमत सदा भयभीता॥ २॥ खेत बहुत जोतेहु बीज विन, रहत धान्यसों रीता। सिद्धि न लहत कोटि तपहूतें, वृथा कलेश सहीता॥३॥ समकित अतुल अखंड. सुधारस जिन पुरुषननें

पीता । भागचन्द ते अजर अमर भये, तिनहीनैं
जग जीता ॥ यहां इक धर्म० ॥ ४ ॥

(२२) राग भैरव

सुन्दर दशलच्छन वृष, सेय सदा भाई ।
जासतैं ततच्छन जन, होय विश्वराई ॥ टेक ॥
क्रोधको निरोध, शांत-सुधाको नितांत शोध ।
मानको तजौ, भजौ स्वभाव कोमलाई ॥ १ ॥
छल बल तजि, विमलभाव सरलताई भजि ।
सब जीव चैन दैन, वैन कह सुहाई ॥ २ ॥
ज्ञान-तीर्थ स्नान दान, ध्यान भान हृदय आन ।
दया-चरन धारि, करन-विषय सब विहाई ॥ ३ ॥
आलस हरि, द्वादश तप धारि, शुद्ध मानस करि ।
स्नेहगेह देह जानि, तजौ नेहताई ॥ ४ ॥
अंतरंग बाह्य संग त्यागि, आत्मरंग पागि ।
शीलमाल अति विशाल, पहिर शोभनाई ॥ ५ ॥
यह वृष-सोपान राज, मोक्षधाम चढ़न काज ।
शिवसुख निज गुनसमाज, केवली बनाई ॥सुन्दर०। ६॥

(३४) प्रभाती।

षोड़शकारन सुहृदय, धारन कर भाई !
जिनतें जगतारन जिन, होय विश्वराई ॥ टेक ॥
निर्मल श्रद्धान ठान, शंकादिक मल जघान।
देवादिक विनय, सरल-भावतें कराई ॥ १ ॥
शील निरतिचार धार, मारको सदैव मार।
अंतरंग पूर्ण ज्ञान, रागको विधाई ॥ २ ॥
यथाशक्ति द्वादश तप, तपो शुद्ध मानस कर।
आर्त रौद्र ध्यान त्यागि, धर्म शुक्ल ध्याई ॥ ३ ॥
जथाशक्ति वैयावृत धार, अष्टमान टार।
भक्ति श्रीजिनेन्द्रकी, सदैव चित्त लाई ॥ ४ ॥
आरज आचारजके, वंदि पाद-वारिजकों।
भक्ति उपाध्यायकी, निधाय सौख्यदाई ॥ ५ ॥
प्रवचनकी भक्ति जननमरन वृद्धि धरो नित्य।
आवश्यक क्रियामें न हानि कर कदाई ॥ ६ ॥
धर्मकी प्रभावना सु, शर्मकर बढावना सु।
जिनप्रणीत सूत्रमाहिं, प्रीति कर अघाई ॥ ७ ॥
ऐसे जो भावत चित, कलुषता बहावत तसु।
चरनकमल ध्यावत बुध, भागचंद गाई ॥ शोड़श० ॥ ८ ॥

(३५) प्रभाती ।

श्रीजिनवर दरश आज, करत सौख्य पाया ।
अष्ट प्रातिहार्यसहित, पाय शांति काया ॥ टेक ॥
वृक्ष है अशोक जहां, भ्रमर गान गाया ।
सुन्दर मन्दार-पहुप,-वृष्टि होत आया ॥ १ ॥
ज्ञानामृत भरी वानि, खिरै भ्रम नसाया ।
विमल चमर ढोरत हरि, हृदय भक्ति लाया ॥ २ ॥
सिंहासन प्रभाचक्र, वालजग सुहाया ।
देव दुन्दुभी विशाल, जहां सुर बजाया ॥ ३ ॥
मुक्ताफल माल सहित, छत्र तीन छाया ।
भागचन्द अद्भुत छवि, कही नहीं जाया ॥श्रीजिन०॥४॥

(३६) राग दुमरी

वीतराग जिन महिमा थारी, वरन सकै को जन त्रिभुवनमें ॥ वीतराग० ॥ टेक ॥ तुमरे अनंत चतुष्टय प्रगट्यो, निःशेषावरनच्छय छिनमें । मेघ विघटनतैं प्रगटत, जिमि मार्तंड प्रकाश गगनमें ॥ वीतराग० ॥ १ ॥ अप्रमेय ज्ञेयनके ज्ञायक, नहिं परिनमत तदपि ज्ञेयनमें । देखत नयन अनेकरूप

जिमि. मिलत नहीं पुनि निज विषयनमें ॥ वीतराग० ॥ २ ॥ निज उपयोग आपने स्वामी. गाल दिया निश्चल आपनमें । है असमर्थ बाह्य निकसनको. लवन घुला जैसे जीवनमें । वीतराग० ॥ ३ ॥ तुमरे भक्त परम सुख पावत. परत अभक्त अनंत दुखनमें । जैसो मुख देखो तैसो ह्वै. भासत जिम निर्मल दरपनमें ॥ वीतराग० ॥ ४ ॥ तुम कषाय विन परम शांत हो तदपि दक्ष कर्मारिहतनमें । जैसे अतिशीतल तुषार पुनि. जार देत द्रुम भारि गहनमें ॥ वीतराग० ॥ ५ ॥ अब तुम रूप जथारथ पायो. अब इच्छा नहि अन कुमतनमें । भागचन्द अमृतरस पीकर. फिर को चाहै विष निज मनमें ॥ वीतराग० ॥ ६ ॥

(३०) राग ठुमरी

बुधजन पक्षपात तज देखो. सांचा देव कौन है इनमें ॥ बुधजन० ॥ टेक ॥ ब्रह्मा दंड कमंडलधारि. स्वांत भ्रांत वशि सुरनारिनमें । मृगछाला माला मौंजी पुनि. विषयासक्त निवास नलिनमें ॥

बुधजन० ॥ १ ॥ शंभू स्वद्धाअंगसहित पुनि, गिरिजा भोगमगन निशदिनमें । हस्त कपाल व्याल भूषन पुनि, रुण्डमाल तन भस्म मलिनमें ॥ बुधजन० ॥२॥ विष्णु चक्रधर मदनबानवश, लज्जा तजि रमता गोपिनमें । क्रोधानल ज्वाजल्यमान पुनि, तिनके होत प्रचंड अरिनमें ॥ बुधजन० ॥ ३ ॥ श्रीअरहंत परम वैरागी, दूषन लेश प्रवेश न जिनमें । भागचंद इनको स्वरूप यह, अब कहो पूज्यपनो है किनमें ? ॥ बुधजन० ॥ ४ ॥

(३)

अति संक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिविध जीव परिनाम बखाने ॥ अति० ॥ टेक ॥ तीव्र कषाय उदयतैं भावित, दर्वित हिंसादिक अघ ठाने । सो संक्लेश भावफल नरकादिक गति दुख भोगत असहाने ॥ अति० ॥ १ ॥ शुभ उपयोग कारननमें जो, रागकषाय मंद उदयाने । सो विशुद्ध, तसु फल इंद्रादिक, विभव-समाज सकल परमाने ॥ अति०॥२॥ परकारन मोहादिकतें च्युत, दरसन ज्ञान चरन रस

पावे । सो हैं शुद्ध भाव तसु फलतैं, पहुंचत परमानंद ठिकाने । अनि० ॥ ३ ॥ इनमें जुगल बंधके कारन, परद्रव्याश्रित हेयप्रमाने । 'भागचंद' स्वसमय निज हित लखि. तामें रम रहिये भ्रम हाने ॥ अनि० ॥ ४ ॥

(१३)

श्रीजिनवरपद ध्यावें जो नर श्रीजिनवर पद ध्यावें ॥ टेक ॥ तिनकी कर्मकालिमा विनशै. परम ब्रह्म हो जावें । उपल अग्नि संजोग पाय जिमि. कंचन विमल कहावें ॥ श्रीजिनवर० ॥ १ ॥ चन्द्रोज्वल जस तिनको जगमें. पंडित जन नित गावैं । जैसे कमलसुगंध दशोंदिश. पवन सहज फैलावैं ॥ श्रीजिनवर० ॥२॥ तिनहिं मिलनको मुक्ति सुन्दरी चित अभिलाषा ल्यावैं । कृषिमें तृण जिम सहज उपजे त्यों स्वर्गादिक पावें ॥ श्रीजिनवर० ॥ ३ ॥ जनमजरामृत दावानल ये. भाव सलिलतें बुझावैं । भागचन्द कहां ताई बरनै. तिनहिं इन्द्र शिर नावें ॥ श्रीजिनवर० ॥ ४ ॥

(४०) राग ईमन ।

धन धन श्रीश्रेयांसकुमार, तीर्थदान करतार ॥ टेक ॥ प्रभु लखि जाहि पूर्वश्रुत आई, चित हरषाय उदार । नवधा भक्ति समेत ईक्षुरस, प्रासुक दियो अहार ॥ धन० ॥ १ ॥ रतनवृष्टि सुरगन तब कीनो, अमित अमोघ सुधार । कल्पवृक्ष पहुपनकी वर्षा, जहं अलि करत गुञ्जार ॥ धन० ॥ २ ॥ सुरदुन्दुभि सुन्दर अति बाजी, मन्द सुगंधि बयार । धन धन यह दाता इमि नभमें, चहूंदिशि होत उचार ॥ धन० ॥ ३ ॥ जस ताको अमरी नित गावत, चन्द्रोज्ज्वल अविकार । भागचन्द लघुमति क्या बरनै, सो तो पुन्य अपार ॥ धन० ॥ ४ ॥

(४१) राग परज ।

सम आराम विहारी, साधुजन सम आराम विहारी ॥ टेक ॥ एक कल्पतरु पुष्पन सेती, जजत भक्ति विस्तारी । एक कंठविच सप नाखियो, क्रोध दर्पजुत भारी ॥ राखत एक वृत्ति दोउनमें, सबहीके उपगारी ॥ सम आरा० ॥१॥ सारंगी हरिबाल चुखावे,

पुनि मगल मंजारी । व्याघ्रबालकरि सहित नन्दिनी. व्याल नकुलकी नारी ॥ तिनके चरनकमल आश्रयतें. अरिता सकल निवारी ॥ सम आ० ॥ २ ॥ अक्षय अतुल प्रमोद विधायक. ताको धाम अपारी । काम धरा विच गढी सो चिरतें. आतमनिधि अविकारी ॥ खनत ताहि लै कर करमें जे. तीक्षण बुद्धि कुदारी ॥ सम आराम० ॥३॥ निज शुद्धोपयोगरस चाखत. परममता न लगारी । निज सरधान ज्ञान चरनात्मक. निश्चय शिवमगचारी ॥ भागचंद ऐसे श्रीपति प्रति. फिर फिर ढोक हमारी ॥ सम आराम०॥४॥

(५८) राग गौरटा

इष्टजिन केवली म्हाके इष्टजिन केवली. जिन सकल कलिमल दली ॥टेक॥ शान्ति छवि जिनकी विमल जिमि. चन्द्रद्युति मंडली । सत-जन-मन-केकि-तर्पन सघन घनपटली ॥ इष्टजिन के० ॥ १ ॥ स्यात्पदांकित धुनि सुजिनकी. वदनतें निकली । वस्तुतत्त्वप्रकाशिनी जिमि. भानु किरनावली ॥ इष्टजिन ॥ २ ॥ जासुपद अरविंदकी, मकरंद अति

निरमली । जाहि ध्यान करै नमित हर.-मुकुट-दुति-मनि अली ॥ इष्टजिन० ॥३॥ जाहि जजत विराग उपजत. मोहनिद्रा टली । ज्ञानलोचननें प्रगट लखि. धरत शिववटगली ॥ इष्टजिन० ॥ ४ ॥ जासु गुन नहिं पार पावत. वृद्धि ऋद्धि बली । भागचन्द सु अलपमति जन.—की तहां कथा चली ॥इष्टजिन०॥५॥

(४८) राग सोरठ देश

थांकी तो वानीमें हो. निज स्वपरप्रकाशक ज्ञान ॥ टेक ॥ एकीभाव भये जड़ चेतन. तिनकी करत पिछान ॥ थांकी तो० ॥ १ ॥ सकल पदार्थ प्रकाशत जामें. मुकुर तुल्य अमलान ॥ थांकी तो० ॥ २ ॥ जग चूड़ामनि शिव भये ते हो. तिन कीनों सरधान ॥ थांकी तो० ॥ ३ ॥ भागचन्द बुधजन ताहीको. निशदिन करत बखान ॥ थांकी तो० ॥४॥

(४९) राग सारंग, मल्हारमें

गिरिवनवासी मुनिराज. मन वसिया म्हारै हो ॥ टेक ॥ कारनविन उपगारी जगके. तारन-तरन-जिहाज ॥ गिरिवन० ॥ १ ॥ जनम-जरामृत-गद-

गंजनको, करत विवेक इलाज ॥ गिरिवन० ॥ २ ॥ एकाकी जिमि रहत केसरी, निरभय स्वगुन समाज ॥ गिरिवन० ॥ ३ ॥ निर्भूषन निर्वसन निराकुल, सजि रत्नत्रय साज ॥ गिरिवन० ॥ ४ ॥ ध्यानाध्ययनमाहिं नत्पर नित, भागचन्द शिवकाज ॥ गिरिवन० ॥ ५ ॥

(४५) राग सोरठ ।

म्हांके घट जिनधुनि अब प्रगटी ॥ टेक ॥ जागृत दशा भई अब मेरी, मुत्र दशा विघटी । जगरचना दीसत अब मोकों, जैसी रहटघटी ॥ म्हांके घट० ॥ १ ॥ विभ्रम तिमिर-हरन निज दृगकी, जैसी अंजनवटी । तातैं स्वानुभूति प्रापतितैं, परपरनति सब हटी । म्हांके घट० ॥ २ ॥ ताके विन जो अवगम चाहै, सो तो शठ कपटी । तातैं भागचन्द निशिवासर, इक ताहीको रटी ॥ म्हांके घट० ॥ ३ ॥

(४६) राग सोरठ ।

स्वामीजी तुम गुन अपरंपार, चन्द्रोज्ज्वल अवि-कार ॥ टेक ॥ जबै तुम गर्भमाहिं आये, तब सब सुरगन मिलि आये । रतन नगरीमें वरषाये, अमित

अमोघ सुढार ॥ स्वामीजी० ॥१॥ जन्म प्रभु तुमने जब लीना, न्हवन मंदिरपे हरि कीना । भक्ति करि सची सहित भीना, बोला जयजयकार ॥ स्वामीजी० ॥ २ ॥ जगत छनभंगुर जब जाना, भये तब नगन-वृत्ती वाना । स्तवन लौकांतिकसुर ठाना, त्याग राजको भार ॥ स्वामीजी० ॥ ३ ॥ घातिया प्रकृति जबै नासी, चराचर वस्तु सब भासी । धर्मकी वृष्टी करी खासी, केवलज्ञान भंडार ॥ स्वामीजी० ॥ ४ ॥ अघाती प्रकृति सुविघटाई, मुक्तिकान्ता तब ही पाई । निराकुल आनंद असहाई, तीनलोकसरदार ॥ स्वामीजी० ॥ ५ ॥ पार गनधर हू नहिं पावै, कहां लगि भागचन्द गावै । तुम्हारे चरनांबुज ध्यावै, भवसागर सों तार ॥ स्वामीजी० ॥ ६ ॥

(४३) राग काफी

अहो यह उपदेशमाहीं, खूब चित्त लगावना । होयगा कल्यानतेरा, सुख अनंत बढ़ावना ॥ टेक ॥ रहित दूषन विश्वभूषन, देव जिनपति ध्यावना । गगनवत निर्मल अचल मुनि, तिनहिं शीस नवावना

॥ अहो० ॥१॥ धर्म अनुकंपा प्रधान, न जीव कोई सतावना। सप्ततत्त्वपरीक्षना करि, हृदय श्रद्धा लावना ॥ अहो० ॥ २ ॥ पुद्गलादिकतैं पृथक, चैतन्य ब्रह्म लखावना। या विधि विमल सम्यक्त्व धरि, शंकादि पंक बहावना ॥ अहो० ॥३॥ रुचैं भव्यनको वचन जे, शठनको न सुहावना। चन्द्र लखि जिमि कुमुद विकसै, उपल नहिं विकसावना ॥ अहो० ॥ ४ ॥ भागचंद विभावतजि, अनुभव स्वभाविन भावना। या शरण न अन्य जगत-अरण्यमें कहुं पावना ॥ अहो० ॥५॥

([illegible]) राग काफी।

ऐसे विमल भाव जब पावै, तब हम नरभव सुफल कहावै ॥ टेक ॥ दरशबोधमय निज आतम लखि, परद्रव्यनिको नहिं अपनावै। मोह-राग-रुष अहित जान तजि, झटित दूर तिनको छिटकावै ॥ ऐसे० ॥१॥ कर्म शुभाशुभबंध उदयमें, हर्ष विषाद चित्त नहिं ल्यावै। निज-हित-हेत विराग ज्ञान लखि, तिनसों अधिक प्रीति उपजावै ॥ ऐसे० ॥२॥ विषय चाह तजि आत्मवीर्य सजि, दुखदायक विधिबंध

विरावे । भागचन्द शिवसुख सब सुखमय, आकुलता बिन लखि चित चावे ॥ ऐसे० ॥ ३ ॥

(४६) राग काफी ।

प्रभूपै यह वरदान सुपाऊं, फिर जगकीचबीच नहिं आऊं ॥ टेक ॥ जल गंधाक्षत पुष्प सुमोदक, दीप धूप फल सुन्दर ल्याऊं । आनंदजनक कनक-भाजन धरि, अघ अनघ बनाय चढाऊं ॥ प्रभूपै० ॥ १ ॥ आगमके अभ्यासमाहिं पुनि, चित एकाग्र सदैव लगाऊं । संतनकी संगति तजिकैं में, अंत कहूं इक छिन नहिं जाऊं ॥ प्रभूपै० ॥ २ ॥ दोषवादमें मौन रहूं फिर, पुण्यपुरुषगुन निशिदिन गाऊं । मिष्ट स्पष्ट सबहिसों भाषों, वीतराग निज भाव बढाऊं ॥ प्रभूपै० ॥३॥ बाहिजदृष्टि ऐंचके अन्दर, परमानंद-स्वरूप लखाऊं । भागचन्द शिवप्राप्त न जौलौं तौलौं तुम चरनांबुज ध्याऊं ॥ प्रभूपै० ॥ ४ ॥

(४७) लावनी ।

धन्य धन्य है घड़ी आजकी, जिनधुनि श्रवन परी । तत्त्वप्रतीत भई अब मेरे, मिथ्यादृष्टि

टरी ॥ टेक ॥ जड़तैं भिन्न लखी चिन्मूरति, चेतन स्वरस भरी । अहंकार ममकार बुद्धि पुनि, परमें सब परिहरी ॥ धन्य० ॥ १ ॥ पापपुन्य विधिबंध अवस्था, भासी अतिदुखभरी । वीतराग विज्ञान-भावमय, परिनति अति विस्तरी ॥ धन्य० ॥ २ ॥ चाह-दाह विनसी वरसी पुनि, समतामेघझरी । बाढ़ी प्रीति निराकुल पदसों, भागचन्द हमरी ॥ ३ ॥

(५१) लावनी ।

सफल है धन्य धन्य वा घरी, जब ऐसी अति होसी, परमदशा हमरी ॥ टेक ॥ धारि दिगंबरदीक्षा सुन्दर, त्याग परिग्रह अरी । वनवासी कर पात्र परीषह, सहि हों धीर धरी ॥ सफल० ॥ १ ॥ दुर्धर तप निर्भर नित तप हौं, मोह कुवृक्ष करी । पंचाचारक्रिया आचर हों, सकल सार सुथरी ॥ सफल० ॥ २ ॥ विभ्रमतापहरन झरसी निज, अनुभव-मेघझरी । परम शान्त भावनकी तातैं, होसी वृद्धि खरी ॥ सफल० ॥ ३ ॥ त्रेसठिप्रकृति भंग जब होसी, जुत त्रिभंग सगरी । तब केवलदर्शनविबोध

सुख, वीयकला पसरी ॥ सफल० ॥ ४ ॥ लखि हो सकल द्रव्य गुनपरजय, परनति अति गहरी। भागचंद् जब सहजहि मिल है, अचल मुकति नगरी ॥ सफल० ॥ ५ ।

जे दिन तुम विवेक विन खोये ॥ टेक ॥ मोह वारुणी पी अनादितें, परपदमें चिर सोये। सुखकरंड चितपिंड आपपद, गुन अनंत नहिं जोये। जे दिन० ॥१॥ होय बहिर्मुख ठानि राग रुख, कर्म बीज बहु बोये। तसु फल सुख दुख सामग्री लखि, चितमें हरषे रोये ॥ जे दिन० ॥ २ ॥ धवल ध्यान शुचि सलिलपूरतें, आस्रव मल नहिं धोये। परद्रव्यनिकी चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ॥ जे दिन०॥३॥ अब निजमें निज जान नियत तहां, निज परिनाम समोये। यह शिवमारग समरससागर, भागचन्द हित तो ये ॥ जे दिन० ॥ ४ ॥

५८, राग दादरा

धनि ते प्रानि, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान ॥ टेक ॥

रहित सप्त भय तत्त्वारथमें. चित्त न संशय आन। कर्म कर्ममलकी नहिं इच्छा. परमें धरत न ग्लानि। धनि० ॥१॥ सकल भावमें मूढ़दृष्टितजि, करत साम्य-रसपान। आतम धर्म बढ़ावै वा. परदोष न उचरैं वान ॥ धनि० ॥ २ ॥ निज स्वभाव वा. जैनधर्ममें. निजपरथिरता दान। रत्नत्रय महिमा प्रगटावें. प्रीति स्वरूप महान ॥ धनि० ॥३॥ ये वसु अंगसहित निर्मल यह. समकित निज गुन जान। भागचन्द शिवमहल चढ़नकी. अचल प्रथम सोपान ॥ धनि० ॥ ४ ॥

(५४) राग जोड़ा।

ज्ञानी जीवनके भय होय, न या परकार ॥ टेक ॥ इह भव परभव अन्य न मेरो. ज्ञानलोक मम सार। मैं वेदक इक ज्ञानभावको. नहिं परवेदनहार ॥ ज्ञानी० ॥ १ ॥ निज सुभावको नाश न तातें. चाहिये नहिं रखवार। परमगुप्त निजरूप सहज ही. परका तहँ न संचार ॥ ज्ञानी० ॥२॥ चितस्वभाव निज प्रान तासको. कोई नहीं हरतार। मैं चितपिंड अखंड न तातें. अकस्मात भयभार ॥ ज्ञानी० ॥ ३ ॥ होय निशंक

स्वरूप अनुभव, जिनके यह निरधार। मैं सो मैं पर सो मैं नाहिं, भागचन्द भ्रम डार॥ ज्ञानी०॥४॥

[illegible]

मैं तुम शरन लियो, तुम सांचे प्रभु अरहंत। टेक॥ तुमरे दर्शन ज्ञान मुकुर में, दरशत ज्ञान झलकंत। अतुल निराकुल सुख आस्वादत, वीरज अरज अनंत॥ मैं तुम०॥ १॥ रागद्वेष विभाव नाश भये, परम समरसी संत। पद देवाधिदेव पायो किय, दोष क्षुधादिक अंत॥ मैं तुम०॥ २॥ भूषन वसन शस्त्र कामादिक, करन विकार अनंत। तिन तुम परमौदारिक तन, मुद्रा सम शोभंत॥ मैं तुम०॥ ३॥ तुम वानि तैं धर्मतीर्थ जग, माहि त्रिकाल चलंत। निजकल्याणहेतु इन्द्रादिक, तुम पदसेव करंत॥ मैं तुम०॥४॥ तुम गुन अनुभवतैं निज पर गुन, दरसत अगम अचिंत। भागचन्द निजरूपप्राप्ति अब, पावैं हम भगवंत॥ मैं तुम०॥ ५॥

[illegible] दादरा

चेतन निज भ्रमतैं भ्रमत रहै॥ टेक॥ आप अभंग

तथापि अंगके. संग महा दुख (पुंज) वहै । लोहपिंड संगति पावक ज्यों. दुधर घनकी चोट सहै ॥ चेतन० ॥ १ ॥ नामकर्मके उदय प्राप्त नर. नरकादिक परजाय धरै । तामें मान अपनपो विरथा. जन्म जरा मृतु पाय डरै ॥ चेतन० ॥ २ ॥ कर्ता होय रागरुष ठानै. परको साक्षी रहत न यहै । व्याप्य सुव्यापक भाव बिना किमि. परको करता होत न यहै ॥ चे० ॥ ३ ॥ जब भ्रमनींद त्याग निजमें निज. हित हेत सम्हारत है । वीतराग सर्वज्ञ होत तब. भागचन्द हितसीख कहै ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

१७

सत्ता रंगभूमिमें, नटत ब्रह्म नटराय ॥ टेक ॥ रत्नत्रय आभूषणमंडित. शोभा अगम अथाय । सहज सखा निशंकादिक गुन. अतुल समाज बढ़ाय ॥ सत्ता रंग० ॥ १ ॥ समता बीन मधुररस बोलै. ध्यान मृदंग बजाय । नदत निर्जरा नाद अनूपम. नूपुर संवर ल्याय ॥ सत्ता रंग० ॥ २ ॥ लय निज-रूप-मगनता-ल्यावत. नृत्य सुज्ञान कराय । समरस गीतालापन पुनि जो. दुर्लभ

जगमहँ आय ॥ सत्ता० ॥३॥ भागचंद आपहि रीझत तहाँ. परम समाधि लगाय। तहा कृतकृत्य सु होत मोक्षनिधि. अतुल इनामहिं पाय ॥ सत्ता० ॥ ४ ॥

(१८) [illegible]

तुम परम पावन देख जिन. अरि रज-रहस्य विनाशनं। तुम ज्ञान-दृग-जलबीच त्रिभुवन. कमलवत प्रतिभासनं ॥ आनंद निजज अनंत अन्य, अचिंत संतत परनये। बल अतुल कलित स्वभावतैं नहिं. खलित गुन अमिलित थये ॥१॥ सब राग रुष हनि परम श्रवन स्वभाव घन निर्मल दशा। इच्छारहित भवहित खिरत. वच सुनत ही भ्रमतम नशा। एकान्त--गहन--सुदहन स्यात्पद. बहन मय निजपर दया। जाके प्रसाद विषाद बिन. मुनिजन सपदि शिवपद लह्या ॥२॥ भूषन वसन सुमनादि बिन तन, ध्यानमय मुद्रा दिपै। नासाग्र नयन सुपलक हलय न. तेज लखि खगगन छिपै ॥ पुनि वदन निरखत प्रशम जल. बरखत सुहरखत उर धरा। बुधि स्वपर परखत पुन्यआकर. कलिकलिल दुरखत जरा

॥ ३ ॥ इत्यादि बहिरंतर असाधारन, सुविभव-निधान जी । इन्द्रादिवंद पदारविंद, अनिंद तुम भगवान जी । मैं चिर दुखी परचाहतें, तुम धर्म नियत न उर धरो ॥ परदेवसेव करी बहुत, नहिं काज एक तहां सरो ॥४॥ अब भागचन्द्र उदय भयो, मैं शरन आयो तुम तनें । इक दीजिये वरदान तुम जस, स्वपद दायक बुध भनें ॥ परमाहिं इष्ट-अनिष्ट-मति तजि, मगन निज गुनमें रहों । दृग-ज्ञान चर संपूर्ण पाऊं, भागचंद न पर चहों ॥ ५ ॥

(७८) राग दीपचन्दी

कीजिये कृपा मोहे दीजिये स्वपद, मैं तो तेरो ही शरन लीनों है नाथ जी ॥ टेक ॥ दूर करो यह मोह शत्रुको, फिरत सदा जी मेरे साथ जी ॥ कीजिये० ॥१॥ तुमरे वचन कर्मगद-मोचन, संजीवन औषधि क्वाथजी ॥ कीजि० ॥ २ ॥ तुमरे चरन कमल बुध ध्यावत, नावत हैं पुनि निजमाथ जी ॥ कीजि० ॥३॥ भागचन्द मैं दास तिहारो, ठाडो जोरौं जुगल हाथ जी ॥ कीजि० ॥ ४ ॥

(६०) राग दीपचन्दी

निज कारज काहे न सारै रे, भूले प्रानी ॥ टेक ॥ परिग्रह भारथकी कहा नाहीं, आरत होत तिहारै रे ॥ निज० ॥ १ रोगी नर तेरी वपुको कहा, तिस दिन नाहीं जारै रे ॥ निज का० ॥ २ ॥ क्रूरकृतांत सिंह कहा जगमें, जीवनको न पछारै रे ॥ निज० ॥३॥ करनविषय विषभोजनवत कहा, अंत विसरता न धारै रे ॥ निज० ॥ ४ ॥ भागचन्द भवअंधकूपमें धर्म रतन काहे डारै रे ॥ निज का० ॥ ५ ॥

(६१)

हरी तेरी मति नर कौनं हरी । तजि चिन्तामन कांच गहत शठ ॥ टेक ॥ विषय कषाय रुचत तोकों नित, जे दुखकरन अरी । हरी० ॥ १ ॥ सांचे मित्र सुहितकर श्रीगुरु, तिनकी सुधि विसरी । हरी तेरी० ॥ २ ॥ परपरनतिमें आपो मानत, जो अति विपति भरी । हरी० ॥ ३ ॥ भागचन्द जिनराज भजन कहुं, करत न एक घरी । हरी तेरी० ॥ ४ ॥

(६२)

सुमर मन समवसरन सुखदाई । अशरन शरन

धनदकृत प्रभुको ॥ टेक ॥ मानस्तंभ सरोवर सुंदर, विमल सलिलजुत खाई । पुष्पवाटिका तुंगकोट पुनि, नाट्यशाल मनभाई ॥ सुमर मन० ॥ १ ॥ उपवन जुगल विशाल वेदिका, धुजपंकति हलकाई । हाटक कोट कल्पतरुवन पुनि, द्वादश सभा वरनि नहि जाई ॥ सुमर० ॥ तहँ त्रिपीठपर देव स्वयंभू, राजत श्रीजिनराई । जाहि पुरंदरजुत वृन्दारक-वृन्द सु वंदन आई । भागचन्द इमि ध्यावत ते जन पावत जगठ-कुराई ॥ सुमर० मन० ॥ ३ ॥

(३)

साई है सांचा महादेव हमारा । जाके नाहीं रागरोष मद, मोहादिक विस्तारा ॥टेक॥ जाके अंग न भस्म लिप्त है, नहिं रुण्डनकृत हारा । भूषण व्याल न भाल चन्द्र नहिं, शीस जटा नहि धारा ॥ सोई है० ॥१॥ जाके गीत न नृत्य न, मृत्यु न, खेलनको न सवारा । नहिं कापान न काम कामिनी, नहि धन धान्य पसारा ॥ साई है० । २॥ सो तो प्रगट समस्त वस्तुको, देखन जाननहारा । भगचन्द ताहीको ध्यावत, पूजत बारंबारा ॥ साई है० ॥ ३ ॥

(४)

समझाओ जी आज कोई करुनाधरन. आये थे ब्याहिन काज वे. तो भये हैं विरागी पशुदया लख लख ॥टेक॥ विमल चरन पागी. करन विषय त्यागी. उनने परम ज्ञानानंद चख चख ॥ समझाओ०॥१॥ सुभग मुकति नारी. उनहिं लगी प्यारी. हमसों नेह कछु नहीं रख रख। समझाओ०॥२ वे त्रिभुवनस्वामी. मदनरहित नामी. उनके अमर पूज पद नख नख ॥ समझाओ० ॥३॥ भागचन्द मैं तो तड़फत अति-जैसे. जलमों तुरत न्यारी जल झख झख ॥समझाओ०॥४॥

६.

गिरनारीपै ध्यान लगाया. चल सखि नेमिचंद्र मुनि-राया ॥टेक॥ संग भुजंग रंग रन लखि तजि. शत्रु अनंग भगाया। बाल ब्रह्मचारी व्रतधारी. शिवनारी चित लाया ॥ गिरनारी० ॥१॥ मुद्रा नगन मोहनिद्रा विन. नासादृग मन भाया। आसन धन्य अनन्य वन्य चित. पुष्ट (?) थल सम थाया ॥ गिरनारी०॥२॥ जाहि पुरन्दर पूजन आये. सुन्दर पुन्य उपाया । भागचंद मम प्राननाथ सो. और न मोह सुहाया ॥ गि०।३॥

(९६) राग दीपचन्दी परज

नाथ भये ब्रह्मचारी. सखी घर मैं न रहोंगी । टेक ॥
पाणिग्रहण काज प्रभु आये. सहित समाज अपारी ।
तनछिन ही वैराग भये हैं. पशुकरुना उर धारी ॥
नाथ० ।१॥ एक सहस्र अष्ट लच्छनजुत. वा छविकी
बलिहारी । ज्ञानानंद मगन निशिवासर. हमरी सुरत
विसारी ॥नाथ०॥२। मैं भी जिनदीक्षा धरि हों अब-
जाकर श्रीगिरनारी । भागचन्द इमि भनत सखि-
नसों. उग्रसेनकी कुमारी ॥ नाथ० ॥ ३ ॥

(९७) राग दीपचन्दी कानेर

जानके सुज्ञानी. जैनवानीकी सरधा लाइये ॥ टेक ॥
जा बिन काल अनंते भ्रमता. सुख न मिलै कहूं प्रानी
। जानके० ॥ १ ॥ स्वपर विवेक अखंड मिलत है
जाहीके सरधानी ॥ जानके० ॥ २ ॥ अखिलप्रमान-
सिद्ध अविरुद्धत. स्यात्पद शुद्ध निशानी ॥ जानके०
॥ ३ ॥ भागचन्द सत्यारथ जानी. परमधरमरज-
धानी ॥ जानके० ॥ ४ ॥

(९८) राग दीपचन्दी धनाश्री

तू स्वरूप जाने बिन दुखी. तेरी शक्ति न हलकी

वे ॥ टेक ॥ रागादिक वर्णादिक रचना. सो है सब पुद्गलकी वे ॥ तू स्व० ॥ १ ॥ अष्ट गुनातम तेरी मूरति. सो केवलमें झलकी वे ॥ तू स्व० ॥२॥ जगी अनादि कालिमा तेरे. दुस्त्यज मोहन मलकी वे ॥ तू स्व० ॥३॥ मोह तनें भासत है मूरत. पंक तनै ज्यों जलकी वे ॥ तू स्व० ॥४॥ भागचंद सो मिलत ज्ञान सों. स्फूर्ति अखंड स्वबलकी वे । तू स्व० ॥ ५ ॥

(५६) राग [illegible]

महिमा जिनमतकी. कोई वरन सकै बुधिवान ॥ ॥टेक॥ काल अनंत भ्रमत जिय जा विन. पावत नहिं निज थान ॥ परमानन्दधाम भये तेही. तिन कीनों सरधान ॥ महिमा० ॥१॥ भव मरुथलमें तापमयी रवि. तपत जीव अति प्रान । ताको यह अति शीतल सुंदर. धारा मदन समान । महिमा०॥२॥ प्रथम कुमत मनमें हम भूले. कीनी नाहिं पिछान । भागचंद अब याको सेवत. परम पदारथ जान ॥ महिमा० ॥३॥

(५७) राग दीपचन्दी सोरठ

प्रानी समकित ही शिवपंथा । या विन निर्मल सब

ग्रंथा ॥टेक॥ जा विन बाह्यक्रिया तप कोटिक. सफल वृथा है रंथा ॥ प्रानी० ॥१॥ हयजुतरथ भी सारथ विन जिमि. चलत नहीं ऋजु पंथा ॥ प्रानी० ।२॥ भागचन्द सरधानी नर भये, शिवलछमीके कंथा ॥ प्रानी० ॥ ३ ॥

(४९) राग दीपचन्दी

तेरे ज्ञानावरनदा परदा. तातैं सूझत नहिं भेद स्व परदा ॥ टेक ॥ ज्ञान विना भवदुख भोगै तू. पंछी जिमि विन परदा ॥ तेरे० ॥ १ ॥ देहादिकमें आपो मानत. विभ्रममदवश परदा ॥ तेरे० ॥२॥ भागचंद भव विनसै वासा. होय त्रिलोक उपरदा ॥ ते० ॥३॥

(५०) राग दीपचन्दी धमाल

जैनमंदिर हमको लागै प्यारा ॥टेक॥ कधौं व्याह मुकति मंगल ग्रह. तोरनादि जुत लसत अपारा ॥ जैन० ॥१॥ धर्मकेतु सुखहेत देत गुन. अक्षय पुन्य रतनभंडारा ॥ जैन०॥२॥ कहुं पूजन कहूं भजन होत है. कहुं बरसत पुन श्रुतरसधारा ॥ जैन० ॥ ३ ॥ ध्यानारूढ़ विराजत हैं जहां. वीतराग प्रतिबिम्ब

उदास ॥ जैन० ।४। भागचन्द तहां चलिये भाई तजिकैं गृहकारज अघ भाग ॥ जैन० ॥५ ॥

जिनमन्दिर चल भाई, शिव-तिय ब्याह सुमगल-ग्रहवन ॥ टेक ॥ जन धर्मी समाज सकल तहा, तिष्ठत साद बटाई। अमल धर्म गासपनमंदिन एकसा एक सवाई जिन०। १॥ धर्म ध्यान नियम हनाशन कुंड प्रचंड बनाई। होमत कमहविनय सुपठित, धुन धुनि मंत्र पढ़ाई ॥ जिन० ॥२॥ मनिगण नारनादि जुन शाभन केतुमाल लहराई। जिनगुन पढ़न मधुर सुर छावन गान सुहाई। जिन० ॥३॥ बीन मृदंग गजुन बाजत, शोभा वरनि न जाई। भागचंद वर नाथ सारत मन हरत श्रीजिनराई। जिनमन्दिर० । ४ ॥

३२

नवयनं नहीं कतिये भाई। तर निज थलकों या. ॥ टेक ॥ नर पर्याय पाय अति सुंदर, त्यागहु सकल प्रमाद। श्रीजिनधर्म सेय शिव पावन, आतम

७९ ।

जासु प्रमाद ॥ भव० ॥१॥ अबके चूकत ठीक न पड़ेगो. पाछैं अधिक विषाद । सहसी नरक वेदना पुनि तहां. सुननमें कोन फिराद । भव०॥२॥ भागचंद श्रीगुरु शिक्षा विन. भटका काल अनाद । तू कर्ता तूही फल भोगत. कोन करे बकवाद ॥ भव० ॥३॥

८० ।

जे सहज होरीके खिलारी. तिन जीवनकी बलिहारी ।टेक॥ शांतभाव कुंकुम रस चन्दन. भर ममता पिचकारी । उड़त गुलाल निर्जरा संवर. अंबर पहरें भारी ॥ जे० ॥१॥ सम्यकदर्शनादि सँग लेके. परम सखा सुखकारी । भीज रहे निज ध्यान रंगमें. सुमति सखी प्रियनारी ॥ जे० ॥२॥ कर स्नान ज्ञान जलमें पुनि. विमल भये शिवचारी । भागचन्द तिन प्रति नित वंदन. भावसमेत हमारी ॥ जे० ॥ ३ ॥

८१. [illegible]

लखिकें स्वामी रूपको. मेरा मन भया चंगा जी ।टेक॥ विभ्रम नष्ट गरुड़ लखि जैसे. भगत भुजंगा जी ॥ लखि० ।१॥ शान्त भाव भये अब म्हारो,

सुगंगा जी ॥ लखि० ॥ २ ॥ भागचंद अब मेरे लागो. निजरससंगा जी ॥ लखिके० ॥ ३ ॥

[illegible]

स्वामीरूप अनूप विशाल. मन मेरे बसा ॥ टेक ॥ हरिगन चमरवृन्द ढारत तहां. उज्जल जेम मराल ॥ स्वामी ॥ १ ॥ छत्रत्रय ऊपर राजत पुनि. सहित सुमुक्तामाल ॥ स्वामी० ॥ २ ॥ भागचन्द ऐसे प्रभुजीको. नावत नित्य त्रिकाल ॥ स्वामी० ॥ ३ ॥

करो रे भाई. तत्त्वारथ सरधान । नरभव सुकुल सुक्षेत्र पायके ॥ टेक ॥ देखन जाननहार आप लखि. देहादिक परमान ॥ करो रे भाई० ॥ १ ॥ मोह रागरुष अहित जान तजि बंधहु विधि दुखदान ॥ करो रे भाई० ॥ २ ॥ निज स्वरूपमें मगन होय कर. लगन-विषय दो भान ॥ करो रे भाई० ॥ ३ ॥ भागचन्द साधक ह्वै साधो. साध्य स्वपद अमलान ॥ करो रे भाई० ॥ ४ ॥

आनन्दाश्रु बहै लोचनतैं. तातैं आनन न्हाया । गद्गद स्पष्ट वचनजुत निर्मल. मिष्टगान सुरगाया

॥टेक॥ भव वनमें बहु भ्रमन कियो तहां. दुख दावानल भाया। अब तुम भक्तिसुधारस वापी में अवगाह कराया ॥ आ० ॥ १ ॥ तुम वपुदर्पनमें मैंने अब. आतमस्वरूप लखाया। सब कषाय नष्ट भये अब हो. विभ्रम दूर भगाया ॥ आ० ॥ २ ॥ कल्पवृक्ष मैंने निज गृहके. आंगनमांझ उगाया। स्वर्ग विमोक्ष विलास वास पुनि. मम करतलमें आया ॥ आ० ॥ ३ ॥ कलिमल पंक सकल अब मैंने. चितसे दूर बहाया। भागचंद तुम चरनाम्बुजको भक्तिसहित सिर नाया ॥ आ० ॥ ४ ॥

८ राग [illegible]

महाराज श्रीजिनवर जी. आज मैंने प्रभुदर्शन पाये ॥टेक॥ तुमरे ज्ञान द्रव्य गुन पर्जय. निज चित गुन दरशाये। निज लच्छनतें सकल विलच्छन. ततछिन पर हम आये ॥ म० ॥ १ ॥ अप्रशस्त संक्लेश भाव अघ. कारन ध्वंस्त कराये। राग प्रशस्त उदयतें निर्मल. पुन्य समस्त कमाये ॥ म० ॥ २ ॥ विषय कषाय अताप नस्यो सब. साम्य सरोवर न्हाये। रुचि भई तुम समान होवेकी. भागचंद गुन गाये ॥ म० ॥ ३ ॥